बाल केन्द्रित शिक्षा की रूढ़ समझ

प्रो. कृष्ण कुमार से विदूषी जोसफ की बातचीत

प्रो. कृष्ण कुमार

जानेमाने शिक्षाविद्, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के पूर्व निदेशक और वर्तमान में दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय में अध्यापनरत हैं।

विदूषी जोसफ

मुंबई के डी. वाई. पाटिल महाविद्यालय के कानून विभाग से संबद्ध हैं। बच्चों की समाजिक विज्ञान की पढ़ाई, खासकर संवैधानिक मूल्यों की पढ़ाई में रुचि रखती हैं।

प्रश्न : राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 की अनुशंसा है कि पाठ्यपुस्तक के निर्माण में कई स्रोतों से संसाधनों का उपयोग किया जाना चाहिए। क्या राजस्थान सरकार के द्वारा हाल ही में निर्मित समाज विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें उस कसौटी पर खरी उतरती हैं?

उत्तर : राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 की चर्चाओं में इस चुनौती को स्वीकारा गया था कि पाठ्यपुस्तकें बच्चों पर बोझ न हों। इसके पीछे 1993 की यशपाल समिति की यह टिप्पणी थी कि पाठ्यपुस्तकें बच्चों पर इसलिए बोझ बन जाती हैं क्योंकि वे बच्चों के सीखने की प्रक्रिया को ध्यान में रखकर नहीं बनाई जातीं। बच्चों के दृष्टिकोण से सोचकर सामग्री विकसित नहीं की जाती। अगर इस दृष्टिकोण से राजस्थान की इन पाठ्यपुस्तकों को देखें तो यह समस्या सबसे ज्यादा उभर कर आती है कि बच्चे किस तरह से सीखते हैं, कितनी तरह की सामग्री और सीखने की प्रक्रिया में उपलब्ध जानकारी का इस्तेमाल वे किस तरह से करते हैं, इसकी अनदेखी की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस पूरे संदर्भ को ध्यान में रखकर यह सामग्री विकसित नहीं की गई है। यह सामग्री औपचारिक अर्थ में बच्चे का जिक्र करती है लेकिन ऐसा कोई संकेत इस सामग्री को पढ़कर नहीं मिलता कि यह बच्चे के मनोवैज्ञानिक, खासकर सीखने की शैली को ध्यान में रखकर विकसित की गई हों।

प्रश्न : आपने सामाजिक विज्ञान की पुस्तकें पढ़ीं हैं। जिस शैली का इस्तेमाल इन पुस्तकों में हुआ है उसके बारे में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर : इस पहलू को पिछले प्रश्न में उठाए गए पहलू से जोड़कर देखा जाना चाहिए। जब राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यपुस्तकें विकसित की गई थीं तो भारत जैसे बहुत बड़े और विविध देश को उपलब्ध विवरणों में से कुछ को चुनकर पूर्णता के साथ चित्रित करने की कोशिश की गई थी। एनसीईआरटी हमेशा से ही इस बात से अवगत रही है कि हम अधिक से अधिक एक उदाहरण पेश कर सकते हैं कि पाठ्यपुस्तक ऐसी होनी चाहिए। इस मिसाल को स्थापित करके यह उम्मीद की गई थी कि जब राज्य या अन्य संस्थाएं कोई पाठ्यसामग्री बनाएंगी तो वे उस शैली का उपयोग कर सकेंगी जिस शैली में एनसीईआरटी ने पुस्तकें विकसित की हैं।

जहां तक राज्य सरकारों से एनसीईआरटी की उम्मीद का सवाल है वह यही थी कि राज्य अपेक्षाकृत एक छोटी इकाई हैं और सांस्कृतिक या भौगोलिक दृष्टि से देखें तो राज्य को इकाई मानने के कई मायने उभरते हैं। इस स्तर पर उम्मीद की गई थी कि राज्य के स्तर पर पाठ्यपुस्तक कहीं ज्यादा विवरणों को शामिल कर सकती हैं। इसलिए वह राज्य में पढ़ने वाले बच्चों को अपने आसपास के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की ज्यादा गहरी झलक दे सकती हैं। जिस विविधता की बात हम राष्ट्रीय स्तर पर करते हैं, उसी विविधता के अनेक आयाम राज्य के स्तर पर उभरते हैं। भारत न केवल विविध है बल्कि बहु-आयामी समाज भी है। जब राज्य के स्तर पर कोई शैक्षणिक सामग्री बनाने का मौका मिलता है तो हम और ज्यादा गहराई से देख सकते हैं कि लोगों की जीवन शैली और व्यवहार में किस-किस तरह के आयाम हैं जो बच्चों के दृष्टिकोण से ज्ञान सामग्री बनने लायक हैं।

राजस्थान में विकसित किताबों की दिक्कत यह है कि यह बच्चों के सीखने की शैली को तवज्जो नहीं देतीं। इस बात के कई प्रमाण सामाजिक विज्ञान की इन किताबों में देखने को मिलते हैं। ये किताबें सिर्फ एक औपचारिक अर्थ में बाल केंद्रित हैं, वास्तविक मायनों में नहीं हैं। इन पुस्तकों का एक-एक पृष्ठ अवधारणाओं से लदा हुआ है। विषयवस्तु लिखते समय यह सोचा ही नहीं गया कि अवधारणा होती क्या है। अगर आप पाठ्यपुस्तक निर्माण में शिक्षकों को शामिल करने की नीति पर अमल करते हैं तो उसका उद्देश्य यही है कि जब शिक्षक एक समिति में रहेगा तो विशेषज्ञों और पूरी समिति को यह आभास रहेगा कि किसी चीज को बच्चे को पढ़ाने का अर्थ क्या होता है। उस हिसाब से पाठ में अवधारणाओं का घनत्व तय किया जा सकता है लेकिन जब हम इन किताबों को देखते हैं तो अवधारणाओं की बारिश-सी होती दिखाई देती है। ऐसे हिस्से हैं जिनको पढ़कर लगता है कि लिखते समय बिल्कुल सोचा ही नहीं गया है कि क्या लिखा जा रहा है। इसके उदाहरण के तौर पर मैं आपको किताब का एक हिस्सा पढ़कर सुनाता हूं। आप कक्षा 6 की पुस्तक के पृष्ठ 86 पर देखिए। यह पाठ है 'समाज और सरकार'।

''समाचारपत्रों, रेडियो, टीवी, इन्टरनेट जैसे मीडिया के सशक्त उपकरणों के माध्यम से आज की लोकतांत्रिक सरकार और भी अधिक उत्तरदायी एवं लोकप्रिय होती जा रही है। इन साधनों पर सरकार का अनुचित नियंत्रण नहीं होना चाहिए ताकि मीडिया बिना डर और दवाब के सरकार के कार्यों का मूल्यांकन कर सके। देश के लोग इन साधनों से मिली सूचनाओं के आधार पर विभिन्न विषयों पर आपस में विचार-विमर्श कर सरकार के प्रदर्शन के बारे में अपनी राय बनाते हैं।''

यह अनुच्छेद चार साढ़े चार पंक्तियों का है। कल्पना कीजिए कि मैं एक शिक्षक हूं और यह हिस्सा पढ़ा रहा हूं। इसकी पहली पंक्ति में चार साधन बताए गए हैं समाचारपत्र, रेडियो, टीवी और इन्टरनेट। अव्वल तो एक अवधारणा यहीं आ जाती है कि इन सभी को उपकरण कहा गया है। रेडियो और टीवी को तो आप उपकरण कह सकते हैं लेकिन इन्टरनेट एक सेवा है। कम्प्यूटर भले ही एक उपकरण है और दूसरी तरफ समाचारपत्र उपकरण नहीं हैं। यह समझाना पड़ेगा कि उपकरण क्या होता है और यह शब्द आसानी से समझाया नहीं जा सकता क्योंकि 'उपकरणों की मदद से' समझाने में मुश्किल आएगी। ऊपर से विशेषण लगा हुआ है 'सशक्त', ऐसे में एक शिक्षक के रूप में जाहिर है मेरी जिम्मेदारी बनेगी कि मैं बच्चों को समझाऊं कि ये उपकरण सशक्त क्यों कहे गए हैं। इनमें ऐसी कौनसी शक्ति है और इनकी तुलना में कौनसे ऐसे उपकरण हैं जो सशक्त नहीं हैं। आगे चलें, लोकतांत्रिक सरकार उत्तरदायी एवं लोकप्रिय होती जा रही है। यानी ऐसी भी लोकतांत्रिक सरकार हो सकती है जो लोकप्रिय न हो। दो तरह की लोकतांत्रिक सरकार हो सकती हैं। एक कम लोकप्रिय और एक ज्यादा लोकप्रिय, तो एक शिक्षक के रूप में यह समझाना पड़ेगा कि एक सरकार अधिक लोकप्रिय कैसे बन जाती है। इसके बाद अवधारणा है उत्तरदायी की जो अपने-आपमें एक जटिल अवधारणा है। एक बच्चे को समझने में मुश्किल होती है कि एक सरकार कब उत्तरदायी होती है और कब नहीं होती। इस अवधारणा को किसी बच्चे के संदर्भ में गढ़ना काफी मुश्किल काम है। और आगे चलें, सरकार का अनुचित नियंत्रण नहीं होना चाहिए। यानी उचित नियंत्रण हो सकता है। बच्चों के साथ शिक्षक को सरकार और इन साधनों के संबंध की चर्चा करनी होगी, उसके बाद यह समझाना होगा कि उचित नियंत्रण क्या होगा और अनुचित नियंत्रण क्या

होगा। अगर किसी ऐसे वयस्क को भी यह पढ़ाया जाए जो सरकार के इन मुद्दों से अवगत नहीं है तो उसके लिए भी यह समझने में बड़ी मुश्किल होगी क्योंकि यह बड़ी बारीक अवधारणा है कि नियंत्रण एक सीमा के आगे अनुचित हो जाता है, वरना उचित हो सकता है। फिर भी यह प्रश्न रह जाते हैं कि क्या भारत जैसे देश में इन्टरनेट जैसे साधनों पर कोई भी नियंत्रण संभव है। अनुचित नियंत्रण बहुत ही कठिन मुद्दा है और उस पर भी अवधारणा कह रही है कि नहीं होना चाहिए। आशय यह है कि अगर आप बच्चे के दृष्टिकोण से सोचते हैं तो आपकी वाक्य रचना और आपके लेखन की शैली इन सभी पर फर्क पड़ता है, आप उसको बहुत विरल बनाने की कोशिश करते हैं।

इन किताबों की जो शैली है, एक तो वह वर्णनात्मक है ऊपर से बहुत सघन है। इसकी बुनावट को लेखक समूह सोच-विचार के बुन नहीं पाया है। यह किताबें एक तरह की व्याख्यान की शैली में लिखी गई हैं कि शिक्षक बस बोलता जाए। इस बात का ख्याल नहीं रखा गया है कि किसी को समझना भी है। उस किस्म के व्याख्यान देने के लिए यह शैली शिक्षक को प्रेरित करती है। अगर ये पुस्तकें एक पारंपरिक व्याख्यान के लिए भी बनाई जातीं तो भी मुद्दों एवं उदाहरणों के चुनाव पर ध्यान दिया जाता। इन बातों को ध्यान में रखा जाता कि पाठक किस आयु के हैं और इस आयु में उनका अनुभव जगत क्या होगा। समाज की विभिन्न पृष्ठभूमियों से आने के कारण उनके अनुभव जगत में कैसी विभिन्नताएं होंगी और किसी विशिष्ट संदर्भ में वे सोच पाएं, इसके लिए कौनसा उदाहरण सक्षम होगा, इन सभी बिंदुओं पर विचार करने की जरूरत होती है। ऐसा लगता है कि राजस्थान में यह पाठ्यसामग्री एक सामान्य क्रम के चलते विकसित कर दी गई है, लिख दी गई है। उस अर्थ में यह विकसित नहीं की गई है कि बच्चे इससे अपने अनुभव और ज्ञान के साथ जुड़ाव महसूस करते हुए आगे बढ़ सकें।

दरअसल राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 की चर्चाओं में यह भी एक बहस का मुद्दा बना था कि क्या पाठ्यपुस्तकें लिखी जाती हैं क्योंकि लिखना तो बहुत ही स्वाभाविक एवं सरल काम है लेकिन जब आप उस सामग्री का विकास करते हैं तब आप विमर्श करके यह तय करते हैं कि इसको किस तरह प्रस्तुत किया जाए। राजस्थान की इन पुस्तकों में प्रस्तुति की सूक्ष्मता दिखाई नहीं देती।

प्रश्न : राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 की अन्य अनुशंसा थी, राज्यों के विशिष्ट संदर्भ में स्थित करते हुए ज्ञान की नवरचना हो जिसमें सभी सामाजिक समूहों के संघर्ष शामिल हों और पुस्तक में शामिल पहलुओं का व्यापक दायरा हो। राजस्थान के संदर्भ को ज्ञान की पुनर्रचना में इस्तेमाल करने में ये पुस्तकें कितनी सफल हैं?

उत्तर : बहुत कम मात्रा में, नाम मात्र के लिए। कुछ चित्र दिखाई देते हैं जिनमें ऐसे प्रतीक हैं जो राजस्थान की छवि के साथ रूढ़ हो गए हैं या वहां के ग्रामीण जीवन के साथ जुड़े हुए हैं; जैसे कि लहंगा पहने और घूंघट ओढ़े हुए ग्रामीण औरत। उनका इस्तेमाल करके कहीं-कहीं एक तरह की पहचान-सी प्रस्तुत की गई है। अधिकांश हिस्सों में वह भी नहीं दिखाई देती। इतिहास में तो इस बात पर बहुत ही कम काम हुआ है कि अवधारणाओं के विकास या ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को प्रस्तुत करने के लिए राजस्थान के संदर्भ का इस्तेमाल किया गया हो। भूगोल के हिस्से भी सामान्य भूगोल की पुस्तक जैसे ही हैं। कोई ऐसा प्रसंग नहीं दिखाई देता जिसमें कि राजस्थान के किसी विशेष संदर्भ का इस्तेमाल किसी अवधारणा को प्रस्तुत करने के लिए किया गया हो।

प्रश्न : पाठ्यपुस्तक विकास के इस चरण में राजस्थान में पुराने विषय नागरिक शास्त्र को हटाकर नए विषय सामाजिक-राजनीतिक जीवन को अपनाया गया जो कि यशपाल समिति की अनुशंसा के आधार पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 से शुरू किया गया। राजस्थान में विकसित इस विषय की पुस्तकें क्या नागरिक शास्त्र के ढांचे से उबर पाई हैं?

उत्तर : 1993 में यशपाल समिति की नागरिक शास्त्र विषय से शिकायत थी कि इस विषय की अवधारणा एक औपनिवेशिक अवधारणा है जिसके तहत सरकार के ढांचे की जानकारी पहुंचाने को नागरिक बनाना समझा गया। यह अवधारणा इस बात पर टिकी हुई है कि सरकार व्यक्ति से बहुत ऊपर की चीज है। सरकार अपने काम को सरल

बनाने के लिए अपने बारे में लोगों को सूचित करती है। एक तरह से उसमें नागरिक की अवधारणा नहीं थी, वह कहने को ही नागरिक शास्त्र था; दरअसल वह प्रजा शास्त्र था कि प्रजा को सूचित करना है कि सरकार क्या-क्या कर रही है। इस दृष्टिकोण से यशपाल समिति और बाद में सामाजिक विज्ञान के अध्ययन के लिए गठित फोकस समूह ने यह मत दिया कि आज भारत सरकार न तो औपनिवेशिक सरकार की तरह चलती है, न ही चल सकती है और न ही चलनी चाहिए। एक आजाद देश के संदर्भ में जहां लोकतंत्र स्थायी हो चुका है, वहां सरकार के कामों के प्रति नागरिक का केवल सचेत हो जाना पर्याप्त नहीं है। यहां तो नागरिक सरकार को निरंतर सुधारने वाला एक सजीव एवं सक्रिय भागीदार है जो राज्य के तंत्र को निरंतर सुदृढ़ करने में मदद देता है। इस मदद की खातिर ही नागरिक सवाल उठाते हैं। इसलिए लोकतांत्रिक संदर्भों में नागरिक शास्त्र का ही कोई स्थान नहीं रह जाता। इसलिए यह अनुशंसा की गई थी कि राजनीति एक समाज में किस तरह भूमिका निभाती है, इस बात को एक नए विषय के रूप में सामाजिक विज्ञानों में शामिल किया जाए। इसलिए सामाजिक-राजनीतिक जीवन पुस्तकों की श्रृंखला 2005 में एनसीईआरटी में तैयार की गई थी।

प्रश्न : जैसा कि आपने कहा कि लोकतंत्र में राज्य के तंत्र को सुदृढ़ करने में नागरिक निरंतर मदद देते हैं। क्या राजस्थान की यह नई पुस्तकें ऐसे नागरिक को तैयार करने में कोई भूमिका निभाती दिखती हैं?

उत्तर : अभी तो दिक्कत यह लगती है कि यह पाठ्यपुस्तकें उस अनुशंसा को आत्मसात किए बिना बनाई गई हैं। समाज विज्ञान के संदर्भ में जो बात राष्ट्रीय फोकस समूह ने कही है कि समाज संबंधी ज्ञान को वैज्ञानिक तरीकों से पढ़ाया जाए। यह बात इन पुस्तकों में कहीं दिखाई नहीं देती क्योंकि शिक्षण की जो पद्धति यहां लक्षित है उसमें विद्यार्थी को एक तर्कशील व्यक्ति के रूप में नहीं देखा गया है, इसलिए इन पुस्तकों से समाज विज्ञान की पढ़ाई संभव ही नहीं है। यशपाल समिति की अनुशंसा में एक गतिशील समाज और उसके संदर्भ में लोकतांत्रिक दृष्टि विकसित करना एक लक्ष्य था जिसमें कि आलोचनात्मक गहराई हो। हमें लगता है कि जिन लोगों ने राजस्थान की इन पाठ्यपुस्तकों को लिखा है उन्होंने इस अनुशंसा के पूरे संदर्भ पर ध्यान नहीं दिया या सोच लिया कि यह एक तरह के शब्द हैं या जाप है। हमारे यहां अक्सर ऐसा होता ही रहा है। अगर आप भारत में शिक्षा का इतिहास देखें तो पाएंगे कि हम यह मानकर चलते हैं कि क्रांति तो हो जाए पर परिर्वतन नहीं होना चाहिए। ऐसा ही सिलसिला यहां दिखता है कि एक नई पाठ्यपुस्तक बन गई, नए विषय को भी स्वीकार लिया लेकिन परिवर्तन को यथासंभव दूर रखा गया है। एक चिर-परिचित शैली की किताबें हैं जिसमें बच्चे सवाल पूछ रहे हैं और शिक्षक उत्तर दे रहा है। हालांकि शिक्षक विद्यार्थी संवाद में एक कृत्रिमता और यांत्रिकता भी है क्योंकि पूछने वाले बच्चों को पहले से ही अवधारणा के सारे पहलू मालूम हैं।

यह मान लिया गया है कि नाटकीकरण पुस्तकों को एक नई रंगत देगा, एक नया रूप देगा। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा का जो शिक्षा दर्शन है और शिक्षणशास्त्रीय मूल्य है जो कि पाठ्यचर्या के दूसरे अध्याय में प्रस्तुत किए गए हैं कि जब हम बच्चों के संदर्भ में बात करते हैं तो ज्ञान क्या है। क्या वह पहले से बनाया हुआ जानकारी का एक बहुत बड़ा पुलिंदा है, जिसे हमें धीरे-धीरे बांटना है या ऐसी एक संरचना है जो कि बच्चे के मानस में अपने आप विकसित हो रही है और उसके विकसित होने में ही हमें भागीदार बनना है; उसके संज्ञान में अनेकों ऐसे प्रश्नों को जन्म देकर जिनकी मदद से वह संरचना और जटिल हो जाए। यह मुद्दा पाठ्यचर्या की रूपरेखा द्वारा दूसरे अध्याय में उठाया गया है। ऐसा लगता है कि राजस्थान की पुस्तक लेखन समितियों ने वह अध्याय पढ़ा नहीं है। डॉ. मीना स्वामीनाथन, जो समिति की सदस्य थीं, उन्होंने यह कहा था कि पिछले 25-30 सालों में यह बात कही तो बार-बार गई है कि बच्चों को ध्यान में रखकर सामग्री बनाई जानी चाहिए लेकिन बच्चे सीखते कैसे हैं, इस चर्चा को पहली बार किसी सरकारी दस्तावेज में जगह मिली है। हम यह मानकर चलते थे कि यह तो मनोविज्ञान की किताबों में लिखा रहता है और वह भी ज्ञान का एक पुलिंदा है, इसलिए रूपरेखा के रचयिताओं ने इस दूसरे अध्याय 'ज्ञान और सीखना' की रचना की जो पुस्तक समिति के सदस्यों को जरूर पढ़ना चाहिए। अगर उस अध्याय को कसौटी के रूप

में इस्तेमाल किया जाए तो राजस्थान के इस बहुत बड़े और गंभीर प्रयास में कुछ बुनियादी समस्याएं हैं जिन्हें राजस्थान के अधिकारी अच्छी तरह समझ सकेंगे और इस पर एक आत्म-निरीक्षण भी कर सकेंगे।

प्रश्न : क्या इन पाठ्यपुस्तकों में विवेचनात्मक चिंतन या ज्ञान सृजन की क्षमता विकसित करने की कोशिशें झलकती हैं?

उत्तर : उसकी झलक भर पाने के लिए हम तरस गए। जिसे आप विवेचनात्मक ज्ञान कह रही हैं, मैंने इन किताबों में उसे ढूंढ़ने की काफी कोशिश की है कि कहीं तो वह मिले लेकिन कुछ मिला नहीं। इन किताबों की एक समस्या यह है कि चित्रों, पृष्ठों के विन्यास के जरिए या गुरू-शिष्य संवाद के जरिए नएपन का आभास देने की कोशिश की गई है जिससे लोगों को लगे कि ये किताबें नई हैं। दुर्भाग्यवश इनके ऊपर लिख भी दिया गया है कि ये राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 पर आधारित हैं। जाहिर है कि एनसीईआरटी किसी को यह कहने से मना तो नहीं कर सकती लेकिन अगर इन पुस्तकों का विश्लेषण किया जाए तो यह पता चलेगा कि जो लिखा गया है वह राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 पर चस्पा होता ही नहीं है। मुझे तो लगता है कि ये 2005 से बहुत पहले से चली आ रही अवधारणाओं पर आधारित हैं और केवल समकालीनता का संप्रेषण करने के लिए छाप दिया गया है कि ये 2005 की पाठ्यचर्या पर आधारित हैं। इससे हमारे अत्यंत व्यस्त सरकारी अधिकारियों को भी भ्रम हो जाएगा कि यह किताबें नई हैं। मुझे उम्मीद है कि राजस्थान के ही शोधकर्ता इन पुस्तकों का विश्लेषण करेंगे और इनमें मौजूद गंभीर एवं बुनियादी समस्याओं को सामने रखेंगे।

प्रश्न : इस प्रक्रिया में इस्तेमाल करने के लिए आईसीआईसीआई फाउंडेशन से वित्तीय सहयोग मिला। इस लिहाज से चित्रों एवं पृष्ठ विन्यास की गुणवत्ता पर आपकी क्या राय है?

उत्तर : ये बहुत ही गंभीर और हमारी प्राथमिकताओं के मुद्दे हैं। क्या हम बच्चों को इस लायक समझते हैं कि वे ज्यादा भारी कागज की किताब पढ़ें और अच्छी किस्म के चित्रों की मदद से चीजों को समझें। जहां तक तस्वीरों का सवाल है तो होना यह चाहिए कि पाठ्यपुस्तक निर्माण की प्रक्रिया में चित्रकार शुरू से शामिल हों ताकि वे पुस्तक के संदर्भ एवं उसकी प्राथमिकताओं को आत्मसात करके चित्र बनाएं। चित्र भी विवेचना की मांग करता है कि कौनसे चित्र दें, किस नजरिए से चित्र को दिखाएं। राजस्थान की पुस्तकों में मुख्यतः चित्रों का इस्तेमाल केवल सजाने के लिए किया गया प्रतीत होता है। हमें यह समझना होगा कि चित्र बच्चे के संज्ञानात्मक विकास में मदद करता है लेकिन हरेक चित्र नहीं करता है। ऐसे चित्रों को बड़े ध्यान से चुनना या बनाना पड़ता है। यदि घर का भी चित्र हो तो ऐसा हो जो बच्चे को घर के बारे में गहराई से सोचने के लिए प्रेरित करे, ऐसा नहीं हो कि किसी भी बच्चे के घर जैसा न हो; ऐसा न हो कि वह केवल एक आदर्श घर हो जैसा कि इन पुस्तकों में है। यह जो चित्रों की बात है कि इसके लिए जरूरी है कि पुस्तक विकास की प्रक्रिया के प्रथम चरण से ही चित्रकार ऐसे विमर्शों और ऐसी अवधारणाओं से परिचित रहें ताकि वे यथार्थ को दर्शा पाएं। लेकिन अगर वे बहसें या चर्चाएं समूह में बिल्कुल हुई ही न हों तो चित्रकार तो अपना काम फिर भी कर देगा, चित्र बनाकर जगह-जगह लगा भी देगा; भले ही उनमें संज्ञानात्मक ज्ञान की कोई संभावना न हो। ये सभी बाद के चरण के मसले हैं। पहले चरण का मसला है कि समूह में इन पहलुओं पर गहराई से चर्चा हो और एक समझ उभर के आए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की प्रक्रिया एक संघर्षमय प्रक्रिया थी। न तो वह एनसीईआरटी का बयान थी न ही सरकार की किसी नीति के तहत प्रसारित की गई थी। वह एक बौद्धिक संघर्ष से निकला हुआ दस्तावेज है और संघर्ष इसी बात का है कि भारत वर्ष में बच्चे को ध्यान में रखकर सीखने का अर्थ क्या है, जहां के समाज में इतनी विषमताएं हैं और मूल्यों को लेकर इतनी कसमसाहट है, इतनी अस्पष्टता है कि संवैधानिक मूल्यों को लेकर भी आम सहमति नहीं पाई जाती है। ऐसी स्थिति में बच्चे को इस बहुत ही गतिशील लोकतांत्रिक और सामाजिक यथार्थ में शामिल करने के लिए हम किस तरह उन तमाम विषयों का ज्ञान विकसित करें; यह समझ 2005 में हुए बौद्धिक संघर्ष से निकली बात थी।

उस संघर्ष से हरेक राज्य को अपने संदर्भ में गुजरना होगा। उन बहसों को पूरी जिम्मेदारी के साथ राज्य के हर स्तर पर चलाना होगा, तब जाकर हम कह सकेंगे कि 2005 की पाठ्यचर्या की बात राज्यों में कुछ आगे बढ़ी है वरना शिक्षा के सुधार का काम सांकेतिक और सतही ही रहेगा; जैसा कि राजस्थान में हुआ है। 2005 की पाठ्यचर्या रूपरेखा इस बात का एक प्रयास है कि शिक्षा ऐसी कोशिश से ही उपज सकती है जिसमें हमारे समय के संघर्ष लगातार स्वीकार किए जा रहे हों और यह कि ये संघर्षमय प्रश्न हैं कि इनके उत्तर अभी निकाले नहीं गए हैं या अवरुद्ध हैं। ऐसे अवरुद्ध उत्तरों को पहचानना या खोज निकालना अभी राज्य के स्तर पर बाकी है।

इसलिए एनसीईआरटी की किताबों में बहुत से बॉक्सों का प्रयोग करना पड़ा क्योंकि बहुत-सी ऐसी बहसें थीं जो कि आलेख के साथ-साथ समानांतर ध्यानाकर्षण के तौर पर रखी गई हैं।

प्रश्न : राजस्थान की पुस्तकों में भी बॉक्स हैं।

उत्तर : नहीं, इन पुस्तकों में बॉक्स नहीं हैं । ये तो स्ट्रिप या पारंपरिक प्रश्नों की पट्टियां हैं। ये बहस के किसी नए पहलू को उजागर नहीं करते हैं बल्कि बच्चे को कुछ करने का आदेश हैं, इसलिए इसमें अलग रंग का इस्तेमाल किया गया है। बॉक्स का मतलब होता है कि ये सब आप पढ़ रहे हैं और इसके साथ इन अन्य मुद्दों पर भी सोचते रहिए। एनसीईआरटी की पुस्तकों में एक धनात्मक संसार रचा गया जिसमें कई तरह के तर्क हैं, कई तरह की आवाजें हैं। बच्चे को बहु-आयामी बहसों में डालने का इरादा है।

प्रश्न : आपके अनुसार इस व्यापक असफलता के क्या कारण हैं?

उत्तर : वह तो मैंने आपको बताया। एक तो, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के दस्तावेज को ठीक से न पढ़ना और उसके विमर्श को आत्मसात न कर पाना। इससे पहले कि कोई समिति मिलजुल कर कोई काम करना शुरू करे, पुस्तक विकास समितियों के बीच में पाठ्यचर्या रूपरेखा में उठाए गए प्रश्नों पर बहस को चलते रहने देना चाहिए। इस तरह के गंभीर कार्य को करने से पहले यह जरूरी है कि पाठ्यचर्या की रूपरेखा की अवधारणात्मक समझ और जिन संघर्षों से वह स्वयं गुजरी है, उन सभी संघर्षों को समिति के स्तर पर आत्मसात किया जाए। जहां यह नहीं हो पाता वहां इस तरह की कमजोरियां रह जाती हैं जैसी राजस्थान की पुस्तकों में दिख रही हैं।

फिर प्रश्न उठता है समितियों की संरचना का। समिति में ऐसे विशेषज्ञ हों जो अपने विषय में बढ़े-चढ़े हों और युवा अध्यापक हों क्योंकि उनके मन में शिक्षणशास्त्रीय सवाल होते हैं और व्यवस्था की कमजोरियों का पूरा एहसास होता है। वे व्यवस्था में जज्ब नहीं हुए होते हैं। इसके अलावा संघर्षशील संगठनों के सदस्य हों क्योंकि वे उन जगहों पर काम करते हैं जहां शिक्षा व्यवस्था विफल हो रही थी। वे जानते हैं कि शिक्षा क्यों विफल होती है। अन्य व्यवसायों से पेशेवर हों जैसे कि वकालत या पत्रकारिता या लेखन। चित्रकारों को समितियों में यथासंभव शामिल किए जाने की जरूरत होती है। राजस्थान की पुस्तक समितियां इतनी गतिशील नहीं हैं, इसलिए इनके पाठों में एक खास तरह की संकीर्णता व्याप्त है।

प्रश्न : क्या आप आगे के लिए कुछ सुझाव देना चाहेंगे?

उत्तर : मुझे उम्मीद है कि हमारा अन्वेषक समाज खोजबीन करके यह बताएगा कि अगर आप 2005 की पाठ्यचर्या रूपरेखा के काम को आगे बढ़ा रहे हैं तो उसमें क्या-क्या कमियां बची हुई हैं। इन किताबों का इस्तेमाल तुरंत शुरू हो चुका है। इनमें सुधार करने का अर्थ यही है कि हम राजस्थान के विशिष्ट संदर्भ में उन मुद्दों पर लौटें जिनके कारण 2005 में पाठ्यचर्या रूपरेखा तैयार की गई। ◆